मङ्गलारम्भ

मङ्गलारम्भ

प्रियतम, मैंने बनने को तेरी सुन्दर ग्रीवा का हार
ललित बहिन-सी कलियाँ छोड़ीं,
भाई-से पल्लव सुकुमार,
साथ-खेलते फूल, खेलती—
साथ-तितलियाँ विविध प्रकार।
गोद-खेलाते हुए पिता-से
पौधे का मृदु स्नेह अपार,
माता-सी प्यारी क्यारी का
सहज, सलोना, सरल दुलार,
बाल्य-सुलभ-चाञ्चल्य, चपलता
छोड़ी, बँधी नियम के तार,
छोड़ा निज क्रीड़ा-शुभस्थली
शुभ्र वाटिका का घर-द्वार;
प्रियतम, बतला दे आकर्षक है क्यों इतना तेरा प्यार ?

—जीवन सहचरी

उपक्रमणिका

उपक्रमणिका

सम्बोधन ... १

१—स्वीकृत ६

२—आशे ! १३

३—नैराश्य १७

४—कीर २१

५—झंडा २५

६—वन्दी २६

७—वन्दी मित्र ३२

८—कोयल ३७

६—मध्याह्न ४५

१०—चुम्बन ५१

११—मधुकर ५७

१२—दुख में ६७

१३—दुखों का स्वागत... ... ... ७१

१४—आदर्श प्रेम ७५

१५—तुमसे ७६

सम्बोधन

१—"बुलाऊँ क्यों मैं तुम्हें पुकार ?
जान ले क्यों सारा संसार ?

तुम्हें इन कलियों का मधु-वास
खींच लाएगा मेरे पास।

२—रहें हम-तुम जब केवल साथ
पिन्हा दूँ 'हार' तुम्हें चुप चाप,

न पाए हम दोनों का प्यार
कभी शंकालु विश्व में व्याप।"

मेरी सजीव कविते !

तुझे वह दिन तो याद ही होगा जब तूने स्वयं अपने लिए यह विशेषण ले लिया था। तूने मेरे हृदय की बात कह दी थी। मैं स्वयं तुझे अन्दर से यही मान रहा था, पर तेरे भय से उसे बाहर न लाता था। तू यह कैसे जान गई ! मालूम होता है तूने मेरे साथ विश्वास-घात किया। मैं ने तुझे अपने हृदय-मन्दिर में यह सोचकर ला रक्खा था कि तू वहाँ एक आदर्श प्रतिमा के समान बिना हिले-डुले बैठी रहेगी, पर मालूम होता है कि जब मैं भावनाओं के उन्माद में अपने हृदय की सुध-बुध भूल जाता हूँ तब तू अपने सिंहासन से उठ कर मेरे हृदय की अन्य कोठरियों की तलाशी लेने लगती है !

और अब तू इतनी ढीठ हो गई है कि तेरी तृप्ति मेरे चढ़ाए फूलों से ही नहीं होती। तू अब मेरे हृदयोद्यान में बेखटके चली जाती है और वहाँ जितनी कलियाँ अपने योग्य समझती है मेरी ओर से अपने को समर्पित कर लेती है। पर देख, फिर भी मैं तेरी पूजा की ओर से निश्चिन्त नहीं हूँ। आज, जब तेरा 'जन्म-दिवस' है, मैं भी एक हार गूँध कर तैयार हूँ, लेकिन, तुझे इसे समर्पण करने के लिए न मैं अनुनय-विनय करना चाहता हूँ और न तू ही इसे लेने में इन्कार-अन्दाज़ दिखलाना चाहेगी। वे तो तूने जब तेरे वे दिखलाने के दिन थे तब भी न दिखलाए, और मेरे दिल में यह अरमान रह ही गया कि एक दिन मैं हार लेकर तेरे पीछे पीछे दौड़ता फिरता और तू 'नहीं' 'नहीं' की झड़ी लगाती हुई मुझसे दूर दूर भागती।

इसके प्रतिकूल, मुझे तो अपना हार गूँधते समय सदा इस बात का डर लगा रहता था, कि कहीं तुझे इसका पता न लग जाय और यह अधगुँधा हार इस 'शुभ-अवसर' के आने से पहले ही मेरे हाथों से छिन

कर तेरे गले में न पहुँच जाय। कुछ याद है कितनी बार जब मैंने हार गूँधने के लिए कली उठाई, तू मेरे हाथों से उसे छीन कर चम्पत हो गई? ख़ैर, अब यह पूरा बन गया है और तू इसे ले ही लेगी। इसी से मैंने इस हार का नाम ही 'तेरा हार' रक्खा है, और इसका आरम्भ 'समर्पण' से न कर के 'स्वीकृत' से करने की धृष्टता की है। क्षमा करना।

इसकी कलियाँ मुझे अभी निर्जीव मालूम होती हैं। पर, मुझे पूरा विश्वास है कि तेरे सजीव स्पर्श से इनमें जीवन आएगा। जीवन ही क्यों—अमरता आएगी। मेरा हार उन अभागे फूलों का नहीं बना जिन्हें क्रूर काल दो ही घड़ी में सुखा कर प्रेमियों को उसे उतार फेंकने के लिए विवश करता है। मेरे हार के फूलों का मुर्झाना तो तब आरम्भ होगा जब तू उसे अपने गले से उतार कर फेंक देगी, पर उसके पहले नहीं। क्या तू कभी ऐसा करेगी?

अपना हार तुझे पहनाने के साथ ही तुझसे एक बात कह देना चाहता हूँ—मानेगी? सुन, चञ्चले! मेरे

इस हार को औरों को दिखाती न फिरना। इन कलियों को मधुर-स्मृति-मय सुगन्ध को समझने वाले केवल दो ही व्यक्ति हैं—एक तो, मेरी तू—मेरी कविता, और एक, तेरा मैं—तेरा कवि। 'तेरा कवि,' क्योंकि मैं समझता हूँ कि संसार में मुझे अपने को कवि कहलाने की योग्यता नहीं है। यदि मैं ऐसा दावा करूँगा तो वह मुझ पर हँसेगा। वह तो मुझे 'तेरा कवि' कहलाने पर भी हँसेगा। पर इस उपाधि को (और यह भी तो तेरी ही दी हुई है न?) तो मैं उसके भय से नहीं छोड़ सकता। वह मुझ पर हँसे और ख़ूब हँसे। मुझे इसका कोई दुःख नहीं है, क्योंकि मेरे सर यह कोई नई बला नहीं। संसार हमेशा से ही मुझ पर हँसता आया है। उससे केवल मैं इतना ही चाहता हूँ कि यदि वह कभी मुझे-तुझे साथ देख ले तो तेरे प्रति मेरे प्रेम, अनुराग, भक्ति के अनोखे, निराले, अनन्य—सम्बन्ध, लगाव, नाते (कोई शब्द मेरी भावनाओं को सन्तुष्ट ही नहीं करता!) को शंकित दृष्टि से न देखे—बस। आशीर्वाद और शुभ-कामना की दो दो पंक्तियाँ और—और समाप्ति—मेरे अपराध तो तेरे समीप सदा क्षम्य हैं ही। अच्छा,—

स्वीकृत

(१)

घर से यह सोच उठी थी
उपहार उन्हें मैं दूँगी,
करके प्रसन्न मन उनका
उनके शुभ आशिष लूँगी।

(२)

पर जब उनकी वह प्रतिभा
नयनों से देखी जाकर,
तब छिपा लिया अञ्चल में
उपहार-हार सकुचा कर।

(३)

मैले कपड़ों के भीतर
तण्डुल जिसने पहचाने,
वह हार छिपाया मेरा
रहता कब तक अनजाने ?

(४)

मैं लज्जित-मूक खड़ी थी,
प्रभु ने मुस्करा बुलाया,
फिर खड़े सामने मेरे
होकर निज शीश झुकाया !

आशे !

आशे !

(१)

भूल तब जाता दुःख अनन्त,
निराशा पतझड़ का हो अन्त
हृदय में छाता पुनः वसन्त,
दमक उठता मेरा मुख म्लान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान ।

(२)

पथिक जो बैठा हिम्मत हार,
जिसे लगता था जीवन भार,
कमर कसता होता तैयार,
पुनः उठता करता प्रस्थान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान ।

(३)

डूबते पा जाता आधार,
सरस होता जीवन निस्सार,
सार-मय फिर होता संसार,
सरल हो जाते कार्य्य महान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान।

(४)

शक्ति का फिर होता सञ्चार,
सूझ पड़ता फिर कुछ-कुछ पार,
हाथ में फिर लेता पतवार,
पुनः खेता जीवन-जल-यान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान।

नैराश्य

नैराश्य

(१)

निशा व्यतीत हो चुकी कब की !
सूर्य्य-किरण कब फूटी !
चहल—पहल हो उठी जगत में,
नींद न तेरी टूटी !

(२)

उठा उठा कर हार गई मैं,
आँख न तूने खोली,
क्या तेरे जीवन-अभिनय की
सारी लीला हो ली ?

(३)

जीवन का तो चिन्ह यही है
सो कर फिर जग जाना,
क्या अनन्त निद्रा में सोना
नहीं मृत्यु का आना?

(४)

तुझे न उठता देख मुझे है
बार बार भ्रम होता—
क्या मैं कोई मृत शरीर को
समझ रही हूँ सोता!

कोर

कीर

(१)

"कीर! तू क्यों बैठा मन मार,
शोक बन कर साकार,
शिथिल-तन मग्न-विचार?
आकर तुझ पर टूट पड़ा है किस चिन्ता का भार?"

(२)

इसे सुन पक्षी पंख पसार,
तीलियों पर पर मार,
हार बैठा लाचार;
पिंजड़े के तारों से निकली मानो यह झङ्कार—

(३)

" कहाँ बन-बन स्वच्छन्द विहार !
कहाँ वन्दी-गृह द्वार ! "
महा यह अत्याचार—
एक दूसरे का ले लेना 'जन्म-सिद्ध-अधिकार' ॥

झगड़ा

झण्डा

(१)

हृदय हमारा करके गद्गद
भाव अनेक उठाता है,
उच्च हमारा होकर झण्डा
जब 'फर-फर' फहराता है!

(२)

अहे! नहीं फहराता झण्डा
वायु-वेग से चञ्चल हो,
हमें बुलाती है माँ भारत
हिला हिला कर अञ्चल को!

(३)

आओ युवको, चलें सुनें क्या
माता हमसे कहती आज।
हाथ हमारे है रखना माँ
भारत के अञ्चल की लाज।

वन्दी

वन्दी

(१)

" पड़े वन्दी क्यों कारागार ?
चले तुम कौन कुचाल ?
चुराया किसका माल ?
छीना क्या किसका जिस पर था तुम्हें नहीं अधिकार ?"

(२)

" न था मन में कोई कुविचार,
न थी दौलत की चाह,
न थी धन की परवाह;
था अपराध हमारा केवल किया देश का प्यार !

(२)

शीश पर मातृ भूमि-ऋण भार,
उसे हूँ रहा उतार।
देशहित कारागार—
कारागार नहीं, वह तो है स्वतन्त्रता का द्वार !"

वन्दी मित्र

वन्दी मित्र

(१)

जेल-कोठरी के मैं द्वार
वन्दी ! तुझसे मिलने आया,
नतमस्तक मन में शर्माया,
मित्र ! मित्रता का मुझसे कुछ निभ न सका व्यवहार।

(२)

कैसे आता तेरे साथ ?
देश-भक्ति करने का अवसर,
बड़े भाग्य से मिले मित्रवर !
मेरी क़िस्मत में वह कैसे लिखते विधि के हाथ !

(३)

मित्र ! तुम्हारे मंगल भाल
अंकित है स्वतन्त्र नित रहना,
मेरे, वन्दी-गृह-दुख सहना,
"मैं स्वतन्त्र ! तू वन्दी ! कैसे ?"—तेरा ठीक सवाल ।

(४)

मित्र ! नहीं क्या यह अविवाद ?
स्वतन्त्र ही स्वतन्त्रता खोता,
वन्दी कभी न वन्दी होता,
अपने को वन्दी कर सकते जो स्वतन्त्र-आज़ाद ।

(५)

कम न देश का मुझको प्यार ।
साथ तुम्हारा मैं भी देता,
अंग-अंग यदि जकड़ न लेता,
मेरा, प्यारे मित्र ! जगत का काला कारागार ।

कोयल

कोयल

(१)

अहे ! कोयल की पहली कूक !
अचानक उसका पड़ना बोल,
हृदय में मधु-रस देना घोल,
श्रवणों का उत्सुक होना, बनना जिह्वा का मूक ।

(२)

कूक ?-कोयल ! या कोई मन्त्र ?
फूक जो तू आमोद-प्रमोद,
भरेगी वसुन्धरा की गोद,
काया-कल्प-क्रिया करने का ज्ञात तुझे क्या तन्त्र ?

(३)

बदल अब प्रकृति पुराना ठाट
करेगी नया नया शृङ्गार,
सजाकर निज तन विविधप्रकार,
देखेगी ऋतुपति-प्रियतम के शुभागमन की बाट।

(४)

करेगा आकर मन्द समीर
बाल-पल्लव-अधरों से बात;
ढकेंगी तरुवर गण के गात,
नई पत्तियाँ पहना उनको हरी सुकोमल चीर।

(५)

वसन्ती, पीले, नीले, लाल,
बैंगनी आदि रंग के फूल,
फूल कर गुच्छ-गुच्छ में झूल,
झूमेंगे तरुवर शाखा में वायु-हिंडोले डाल।

(६)

मक्खियाँ कृपणा होंगी मग्न
माँग सुमनों से रस का दान,
सुना उनको निज गुन गुन गान,
मधु-सञ्चय करने में होंगी तन-मन से संलग्न।

(७)

नयन खोले सर कमल समान
वनी-वन का देखेंगे रूप—
युगुल जोड़ी की सुछवि अनूप;
उन कञ्जों पर होंगे भ्रमरों के नर्तन गुञ्जान।

(८)

बहेगा सरिता में जल श्वेत,
समुज्ज्वल दर्पण के अनुरूप,
देख कर जिसमें अपना रूप,
पीत कुसुम की चादर ओढ़ेंगे सरसों के खेत।

(९)

कुसम-दल से पराग को छीन,
चुरा खिलती कलियों की गन्ध,
कराएगा उनका गँठ-बन्ध,
पवन-पुरोहित गन्ध सुरज से रज सुगन्ध से भीन।

(१०)

फिरेंगे पशु जोड़े ले संग,
संग अज-शावक, बाल-कुरंग,
फड़कते हैं जिनके प्रत्यङ्ग,
पर्वत की चट्टानों पर कुदकेंगे भरे उमंग।

(११)

पक्षियों के सुन राग-कलाप—
प्राकृतिक नाद, ग्राम, सुर, ताल,
शुष्क पड़ जाएँगे तत्काल,
गन्धर्वों के वाद्य-यन्त्र किन्नर के मधुर अलाप।

(१२)

इन्द्र अपना इन्द्रासन त्याग,
अखाड़े अपने करके बन्द,
परम उत्सुक मन दौड़ अमन्द,
खोलेगा सुनने को नन्दन-द्वार भूमि का राग!

(१३)

करेगी मत्त मयूरी नृत्य
अन्य विहगों का सुन कर गान,
देख यह सुर-पति लेगा मान,
परियों के नर्तन हैं केवल आडम्बर के कृत्य!

(१४)

अहे! फिर 'कुऊ' पूर्ण-आवेश!
सुना कर तू ऋतुपति-सन्देश,
लगी दिखलाने उसका वेश,
क्षणिक कल्पने! मुझे घुमाए तूने कितने देश!

(१५)

कोकिले ! पर यह तेरा राग
हमारे नग्न-बुभुक्षित देश,
के लिए लाया क्या सन्देश ?
साथ प्रकृति के बदलेगा इस दीन देश का भाग ?

मध्यान्ह

मध्यान्ह

(१)

सुना था मैं ने प्रातः काल,
हुआ जब रजनी का अवसान,
लगे जब होने उडुगण म्लान,
हिल मिल पक्षी गण का गाना बैठ वृक्ष की डाल—

शारिका, श्यामा, तोते, लाल
आदि के कोमल विविध प्रकार
स्वरों का मधुर चढ़ाव-उतार,
सब के ऊपर कुहुक कुहुक कोयल का देना ताल।

(२)

अहे ! वह सुखद प्रभाती गान,
लगीं तप्त किरणें जब आने,
लगा पवन जब धूलि उड़ाने,
मध्य-दिवस में हाय ! हाय ! हो गया कहाँ लयमान ?

ले गया राग-पुंज हर कौन ?
किसके मन में पाप समाया ?
किसे न औरो का सुख भाया ?
बिठा दिया रागिनी प्रकृति को किसने कर के मौन ?

(३)

प्रकृति ! तुम्हारे भी आनन्द
क्षणिक मनुष्यो के-से होते ?
पल में आते पल में खोते ?
कर्म्म-चक्र में मानव आते,

गाकर रोते, रोकर गाते।
रच न सका क्या चतुरानन दुख
से असम्मिलित तेरा भी सुख ?
रचा गया क्या हम दोनों के लिए एक ही फन्द ?

(४)

अरे न मेरा ऐसा ध्यान—
अब भी है हो रहा उसी लय
से वह गान मुझे है निश्चय।
हुआ करेगा एक समान
संध्या तक यह मधुमय गान,
पक्षी गण जब स्वयं थकित हो
यह विचारते जाएँगे सो—
उठ कर प्रातःकाल कौन हम छेड़ें नूतन तान।
और, नींद में स्वप्न अनेक
देखेंगे ऐसे—है लोक
एक, नहीं है जिसमें शोक,
मृदुल समीर जहाँ बहता है,
सदा वसन्त बना रहता है,

घाम न होता, रात न आती,
जहाँ सदा ही सन्ध्या छाती,
भूख जहाँ पर नहीं सताती,
प्यास नहीं है लगने पाती,
जहाँ न मृत्यु-जन्म का नाम,
जहाँ नहीं जीवन-संग्राम,
जहाँ न कोई करता द्वेष,
जहाँ नहीं भय का लवलेश,
अगणित खग सर्वदा चहकते,
चोंच नहीं पर उनके थकते,
उत्कण्ठित स्वर से है गाना जहाँ काम बस एक !

(५)

सुनूं न फिर मैं क्यों कलरोर ?
आह ! भेद मैंने अब पाया—
बहरा अपना कान बनाया
भय-अशान्ति मय मचा मचाकर हमने ही तो शोर !

चुम्बन

चुम्बन

(१)

ऐ छोटे विहंग सुकुमार !

तेरे कोमल चंचु-अधर से
निकल रहे स्नेहाप्लुत स्वर से
लगता, कोई करे किसी को निर्भय चुम्बन-प्यार।

(२)

किसको करते चुम्बन-प्यार ?

क्या मानव आँखों से देखी
गई न बुद्धि-चक्षु अवरेखी
उसको ऊषा काल बहे जो शीतल-मंद बयार ?

(३)

या सुमनो में शिशु सुकुमार ,
जो सुगन्ध का अब तक सोया,
रजनी के स्वप्नों में खोया,
उसे जगाते धीमे-धीमे कर के चुम्बन-प्यार ?

(४)

या तुम शशि-किरणों के तार
से जो हाथ उन्हें चुम्बन कर
और सितारों का प्रकाश वर
चूम-चूम सस्नेह विदा करते हो, अन्तिम बार ?

(५)

या तुम बाल सूर्य्य के हाथ ,
स्वर्ण-रंग में गए रँगाए,
गए तुम्हारी ओर बढ़ाए,
करते हो आभूषित अपने रजत-चुम्बनों साथ ?

(६)

या तुम उस चुम्बन का,तात !
पाठ याद करते उठ भोर,
जिसे लिटा अञ्चल-पर-छोर
अपने तुमको, मातृ-विहंगिनि ने सिखलाया रात !

(७)

या तुम वह चुम्बन प्रति भोर
उठ कर याद किया करते हो,
(मुझे बताते क्यों डरते हो ?)
जिससे तुम्हें किसी ने भेजा जीवन के इस ओर ?

(८)

तब को तो है मुझे न याद ,
पर अतीत जीवन के चुम्बन
कितने चमका करें हृद्‌गगन !
जिनको मूकस्मृति मेरे मन भरती मधुर विषाद !

(६)

यदि न जगत के धंधे-फंद
होते, मानस-गगन घूमता,
प्रति चुम्बन को पुनः चूमता,
सदा बना मैं तुझ-सा रहता एक विहँग स्वच्छन्द !

मधुकर

(१)

उमड़ घुमड़ काले काले
बादल का नभ में घिर आना,
रिम-झिम रिम-झिम करके अवनी-
तल पर पानी बरसाना।

(२)

सिमिट सिमिट कर एक
सरोवर में जल का जा भरजाना।
मन्द पवन के झोकों से
लहरों का उस पर लहराना।

(३)

कंज-कली का झाँक झाँक
जल के बाहर, भीतर जाना।
किसी व्यक्ति को देख न बाहर।
सहसा शिर ऊपर लाना।

(४)

लोक-लाज के कारण मुँह पर
डाल हरा घूँघट आना।
चपल तरंगों की संगति से
पर उच्छृङ्खल बन जाना।

(५)

घूँघट हटा देख सर-दर्पण
में मुख अपना मुस्काना।
सूर्य्य देव का उसके अधरों
तक अपना कर फैलाना।

(६)

मन्द समीरों का आ आ कर
 मीठे धक्के दे जाना।
 विहँसित होना कंज कली का
 फूली फूली न समाना।

(७)

करने को रस पान कली का
 तब फिर मधुकर का आना।
 छूते ही रस की मदिरा
 उसका मतवाला हो जाना।

(८)

दिन भर मँडरा मँडरा रस
 पीना, पी पी रस मँडराना।
 जब हो जाना थकित शान्त हो
 कली-अंक में सो जाना।

(९)

आँख ऊपरी मुँद जाना
भावना-नयन का खुल जाना।
स्वप्न-देव का उस पर
स्वप्नो का बुनना ताना बाना।

(१०)

सकल विश्व का पिघल पिघल कर
एक सरोवर बन जाना!
जग का सब सौन्दर्य्य सिमट कर
कली रूप उस पर आना!

(११)

सब कवियों के मन का मिलकर
एक सुमधुकर हो जाना!
इस सर-कलिका की सुषमा का
गुन गुन कर के गुण गाना!

(१२)

मधुकर का यह गान श्रवण कर
बार बार पुलकित होना।
तन की सुध रस से खोई थी
मन की सुध स्वर से खोना।

(१३)

सन्ध्या का होना रवि का
अस्ताचल को जा छिप जाना।
कमल दलो को सकुचित करने
वाली रजनी का आना।

(१४)

कोमल कमल दलों में दबना
मधुकर का कोमल-तम तन।
दुसह वेदना सह उसका
करना समाप्त प्यारा जीवन।

(१५)

सुखमय दृश्य दिखाकर उसका
अन्त दुःख मय दिखलाना।
मधुकर के जीवन हरने का
सब सामान किया जाना!

(१६)

इसी लिए सौन्दर्य्य देख कर
शंका यह उठती तत्काल—
कहीं फँसाने को तो मेरे
नहीं बिछाया जाता जाल?

(१७)

ऐसी शंकाओं में फँसता
है क्यों? बतला, मानव मन्द!
हर सुन्दरता में तुझको
अनुभव करना था परमानन्द।

(१८)

सुख दुख क्या है? हृदय-भावना—
जिसने है जैसा माना।
मधुकर ने अपने मरने को
था अनन्त सुख मय जाना!

दुख में

दुख में

(१)

" पड़ी दुखों की तुझ पर मार ?
दुःखो में सुख भरा जान तू,
रो रो कर मुख न कर म्लान तू,
हँस, हँस, हलका हो जाएगा तेरे दुख का भार ।

(२)

निज बल पर जिनको अभिमान
संकट में साहस दिखलाते,
दुःखो को हैं दूर हटाते;
दुख पड़ने पर जो हँसते हैं वही वीर-बलवान" ।

(३)

" मिले मुझे दुख लाखों बार,
पर, दुख में सुख सार समाया—
व्यंग, समझ में कभी न पाया।
सुख में हँसूँ, दुखों में रोऊँ—सीधा सा व्यवहार।

(४)

कोमल से कोमल भी शूल
जब जब है तन मेरे गड़ता,
बच्चों-सा मैं हूँ रो पड़ता;
काँटों को मैं कभी न अब तक समझ सका हूँ फूल।

(५)

एक नियम जीवन में पाल
रहा सदा से हूँ मैं अविचल,
कोई कहे बली या निर्बल,
उन्हें चुभा रहने देता हूँ, देता नहीं निकाल !"

दुखों का स्वागत

दुखों का स्वागत

(१)

नदियाँ नीर भरें जलनिधि में
जो जल-राशि अघाए।
शुष्क, जल रहित मरुस्थली को
दिनकर और तपाए।

(२)

हृष्ट-पुष्ट नित स्वस्थ रहे; कृश-
क्षीण रुग्न हो जाए,
लक्ष्मी के मन्दिर में स्वागत
धनी-महाजन पाए।

(३)

अन्धकार अन्धो को मिलता,
उसे नयन जो पाए
ज्योति मिले, यह नियम जगत का
सम समान को धाए।

(४)

प्यार पास जाए प्यारों के,
सुख सुखियों पर छाए,
आशिष आशिष-वानों पर, मुझ
दुखिया पर दुख आए !

आदर्श प्रेम

आदर्श प्रेम

(१)

प्यार किसी को करना, लेकिन—
कह कर उसे बताना क्या ?
अपने को अर्पण करना, पर—
औरो को अपनाना क्या ?

(२)

गुण का ग्राहक बनना, लेकिन—
गा कर उसे सुनाना क्या ?
मन के कल्पित भावों से
औरों को भ्रम में लाना क्या ?

(३)

ले लेना सुगन्ध सुमनों की,
तोड़ उन्हें मुरझाना क्या?
प्रेम-हार पहनाना, लेकिन—
प्रेम-पाश फैलाना क्या?

(४)

त्याग—अंक में पलें प्रेम-शिशु
उनमें स्वार्थ बताना क्या?
दे कर हृदय हृदय पाने की
आशा व्यर्थ लगाना क्या?

तुमसे

तुमसे

(१)

नहीं चाहता तुलसी-दल बन
शीश तुम्हारे चढ़ पाऊँ,
नहीं, हार की कलियाँ बन कर
गले तुम्हारे पड़ जाऊँ।

(२)

नहीं, भुजाओं में रख तुमको
इन हाथों को करूँ पवित्र,
नहीं, हृदय के अन्दर वन्दी
कर के रखूँ तुम्हारा चित्र।

६

(३)

नहीं चाहता दिखलाने को
तव भक्तों का वेश धरूँ,
नहीं, सखा बन सदा तुम्हारे
दाएँ-बाएँ फिरा करूँ।

(४)

इच्छा केवल-रजकण में मिल
तव मन्दिर के निकट पड़ूँ,
आते जाते कभी तुम्हारे
श्री-चरणों से लिपट पड़ूँ।

मधुर स्मृति

मधुर स्मृति

(१)

याद मुझे है वह दिन पहले
जिस दिन तुझको प्यार किया,
तेरा स्वागत करने को जब
खोल हृदय का द्वार दिया।

(२)

मन-मन्दिर में तुझे बिठा कर
तेरा जब सत्कार किया,
झुक-झुक तेरे चरणों का जब
चुम्बन बारम्बार किया।

(३)

स्नेहमयी वह दृष्टि प्रथम ही
थी जिसने तुझको देखा,
याद नहीं है मुझे, तुझे
देखा पहले या प्यार किया !

(४)

हर्षित हो कर क्यों न सराहूँ
बार बार उस दिन के भाग,
जिस दिन तूने प्रेम हमारा
खुले हृदय स्वीकार किया ?

दुखिया का प्यार

दुखिया का प्यार

(१)

"प्रेम का यह अनुपम व्यवहार !
पास न मेरे हैं वे आते,
मुझे न अपने पास बुलाते,
दूर दूर से कहते हैं, करता हूँ तुझको प्यार !!"

× × × × × ×

(२)

"आपदा के ऐसे आगार—
जहाँ किसी को छू हम देते,
घेर उसे दुख संकट लेते !
मिल कर तुझसे क्यों तुझ पर भी डालूँ दुख का भार ?

(३)

विरह के दुख सौ नहीं, हज़ार
सहा करूँ यदि जीवन भर मैं,
तुझे न दुखित बनाऊँ पर मैं,
'तू है सुखी'—यही तो मेरे जीवन का आधार।

(४)

प्रेम का ही तोड़ूँगा तार—
(चाहे मृत्यु भले ही आए)
ज्ञात मुझे यदि यह हो जाए—
दुखी बना सकता है तुझको इस दुखिया का प्यार"।

कलियों से

कलियों से

(१)

अहे ! मैंने कलियों के साथ,
जब मेरा चञ्चल बचपन था,
महा निर्दयी मेरा मन था,
अत्याचार अनेक किए थे,
कलियो को दुख दीर्घ दिए थे,
तोड़ इन्हें बागो से लाता,
छेद-छेद कर हार बनाता।
क्रूर कार्य्य यह कैसे करता !
सोच इसे हूँ आहे भरता।
कलियो ! तुमसे क्षमा माँगते ये अपराधी हाथ।

× × × × × ×

(२)

अहे ! वह मेरे प्रति उपकार !
कुछ दिन में कुम्हला ही जाती,
गिर कर भूमि-समाधि बनाती।
कौन जानता मेरा खिलना ?
कौन, नाज़ से डुलना-हिलना ?
कौन गोद में मुझको लेता ?
कौन प्रेम का परिचय देता ?
मुझे तोड़ की बड़ी भलाई,
काम किसी के तो कुछ आई ;
बनी रही दो-चार घड़ी तो किसी गले का हार।

× × × × × ×

(३)

अहे ! वह क्षणिक प्रेम का जोश !
सरस-सुगन्धित थी तू जब तक,
बनी स्नेह-भाजन थी तब तक।

जहाँ तनिक-सी तू मुरझाई,
फेंक दी गई, दूर हटाई।
इसी प्रेम से क्या तेरा हो जाता है परितोष?

× × × × × ×

(४)

बदलता पल पल पर संसार,
हृदय विश्व के साथ बदलता,
प्रेम कहाँ फिर लहे अटलता?
इससे केवल यही सोच कर,
लेती हूँ सन्तोष हृदय भर—
मुझको भी था किया किसी ने कभी हृदय से प्यार!

विरह-विषाद

विरह-विषाद

(१)

चन्द्र ! आते ही मृदुल प्रभात—
भू का रवि जब अञ्चल धरता,
किरण, कुसुम, कलरव से भरता
उसे, बना लेते क्यों अपना मलिन, हीन-द्युति गात ?

(२)

निशा रानी का विरह-विषाद ?
शोक प्रकट क्यों इतना करते ?
छिपते जाते आहें भरते।
मिलन प्रणयिनी से तो निश्चित एक दिवस के बाद !

(३)

नहीं कुछ सुनते मेरी बात ?

देव ! दुख-विरह क्षणिक तुम्हें जब,

इतना होता, बतलाओ अब,

धरें धैर्य्य मानव हम क्यों तब,

हो वियोग जिनका मिलना फिर दूर ? निकट? अज्ञात !

मूक प्रेम

मूक प्रेम

(१)

हमारी स्नेह-मूर्ति ! कुछ बोल ।
भावना के पुष्पो के हार,
गूँथ सुकुमार स्नेह के तार,
चढ़ाए मैं ने तेरे द्वार,
भाए तुझे, न भाए—कह दे कुछ तो मुँह को खोल ।

(२)

शास्त्र के सिद्ध, सत्य, अनमोल
वचन बतलाते युग प्राचीन
भक्त जब होता भक्ति-विलीन,
श्रवण कर उसके सविनय, दीन
वचन, मूक पाषाण मूर्तियाँ भी पड़ती थीं बोल !

(३)

आ गया हाय ! समय अब कौन ?
हैं सजीव जो मधुर बोलतीं,
बात बात में अमृत घोलतीं,
सहज हृदय के भाव खोलतीं,
वे भी क्या भावना-भक्ति से हो जाएँगी ! मौन !

(४)

नयन में स्नेह भरा, मत मोड़
आँख, कर प्रकटित अपना भाव,
भयंकर मुझसे अधिक दुराव।
जानती अकथित प्रेम प्रभाव ?
प्रबल धार यह बाहर आती बाँध हृदय का तोड़ !

उपहार

उपहार

(१)

जब लेकर के कुछ उपहार
मैं तेरे सम्मुख आता हूँ,
मन में कितना शर्माता हूँ!
अरे! कहाँ ये तुच्छ वस्तुएँ! कहाँ हमारा प्यार!

(२)

जग के वैभव का भण्डार
एक स्वप्न में मैंने पाया,
चरणों में ला उसे चढ़ाया
तेरे, पर क्या हो पाया सन्तुष्ट हमारा प्यार?

(३)

जाग्रत मे मैं निर्धन-दीन ।
क्या देने को तुझको लाऊँ,
जिससे अपना प्यार दिखाऊँ ?
इसी सोच में हृदय हमारा निशि-दिन चिन्ता-पीन ।

(४)

इससे देखूँ एक बचाव—
अपना सब अस्तित्व मिटाऊँ,
तुझमें ही बिलकुल मिल जाऊँ,
रहे न हृदय जहाँ हो 'देने' 'दिखलाने' का भाव !

मेरा धर्म्म

मेरा धर्म्म

(१)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण ?—
किसे समझता मैं भगवान ?
किसका उठकर करता ध्यान ?
किसे हृदय में अपने देता सब से उच्चस्थान ?

(२)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण ?—
किसे समझता प्राणाधार ?
किसकी करता भक्ति अपार ?
समझूँ अन्दर चमक रही है किसकी ज्योति महान ?

(३)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण ?—
ईश्वर को मैं नहीं जानता,
उसकी सत्ता नहीं मानता,
जिसे न देखा जाना कैसे उसको लेता मान ?

(४)

जगती में मैं अब तक प्राण !
केवल एक प्रेम पहचानूँ,
उसे हृदय का स्वामी मानूँ,
सब कहते भगवान प्रेम है—प्रेम हमें भगवान !

(५)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण ?—
कौन शक्ति मेरे तन देता ?
कौन तरी जीवन की खेता ?
कौन हमारा जीव ?—जान कर बनती हो अनजान ?

(६)

नयन करो मत नीचे प्राण !
शक्ति तुम्हीं हो मुझको देती,
तुम्हीं तरी जीवन की खेती,
तुम्हीं जीव हो, प्राण ! हमारी—और तुम्हीं भगवान !!

(७)

"यह कैसे ?"—तुम पूछो प्राण !
ईश-जीव में भेद नहीं है,
जहाँ जीव है ईश वहीं है,
'प्रेम' 'प्राण' तुम दोनो मेरी—शंकर वचन प्रमाण—

(८)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण !
किसको रक्षक अपना कहता,
सदा आसरे जिसके रहता,
करा सरलता से लेने को ईश्वर से पहचान ?

(९)

सौन्दर्य्य ने तेरे प्राण !
मुझे प्रेम का पाठ पढ़ाया,
मेरे ईश्वर तक पहुँचाया,
इससे कहूँ उसे मैं अपना ईश्वर—दूत सुजान।

(१०)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण ?
धर्म्म—ग्रन्थ है कौन हमारा ?
शंकाओं में कौन सहारा ?
ज्ञान बढ़ाऊँ किससे ?—मानूँ किसके वाक्य प्रमाण ?

(११)

तेरे भोले—पन में प्राण !
भरा ज्ञान का सारा सार,
सदा उसी का लूँ आधार,
करता उसका पाठ—वही है मेरा वेद—कुरान।

(१२)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण ?—
मेरा कौन पवित्र—स्थान,
शुचिता मुझको करे प्रदान,
जिसकी ओर तीर्थ-यात्री बन करता मैं प्रस्थान ?

(१३)

हर्ष हमारा मक्का प्राण !
हम-तुम ने मिल उसे बनाया,
प्रेम वहाँ पर बसने आया,
नहीं वासना, पाप वहां पर पाते वासस्थान।

(१४)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण ?
स्वर्ग कहाँ मैं अपना मानूँ ?
प्रेम ! न इसका उत्तर जानूँ,
परे भूमि से लोकों का है कुछ भी मुझे न ज्ञान।

(१५)

अजर, अमर के कभी विचार
नहीं हृदय में मेरे आए।
पल भर का जीवन कट जाए
इसी तरह बस तुझे गोद में लेकर करते प्यार!

संकोच

संकोच

(१)

प्रियतम-द्वार खड़ी हूँ मौन।
यहाँ भला कब सोचा आना !
मेरा ! उनका ! दर्शन पाना !
खींच मुझे इतनी दूरी से लाया बरबस कौन ?

(२)

बन्द निर्दयी क्यों हैं द्वार !
'मेरे प्यारे' ? 'प्रियतम' ? 'प्रियवर' ?
उन्हें पुकारूँ क्या मैं कह कर ?
लेकर नाम ? पूछती अपने मन से बारम्बार !

(३)

मौन खड़ी; खटकाऊँ द्वार—
अरे! हाथ ख़ाली ही आई?
देने को उपहार न लाई!
अरी! करेगी किससे प्रियतम की पूजा-सत्कार?

(४)

क्षमा कपट का हो व्यवहार—
यहीं कहीं बैठूँगी छिपकर,
आएँगे, देखूँगी पल भर,
बस लौटूँगी उस पल का हृत्पट पर चित्र उतार।

प्रेम का आरम्भ

प्रेम का आरम्भ

(१)

प्रियतम ! दिवस तुम्हें वह याद ?

नभ में निकल तरैयाँ-तारे
छिटक रहे थे प्यारे प्यारे,
हरी डालियों का घर अञ्चल,
पवन हो रहा था कुछ चञ्चल,
कलियों पर झुक रहे कुसुम थे,
वृक्ष तले बैठे हम तुम थे.................?
प्रथम प्रेम का जिस दिन तुम पर छाया था उन्माद ?

× × × × ×

(२)

प्रेम ! प्रेम ! उस दिन की याद
नहीं चाहता मुझे दिलाओ,
भूल उसे अब तुम भी जाओ।
वह दिन उनकी याद दिलाता,
जब न तुम्हारा मुझसे नाता।
भुला दिए मैंने दिन सारे,
बिना प्रेम जब रहा तुम्हारे।
तब की तो कल्पना हृदय में मेरे भरे विषाद !

(३)

यद्यपि वह दिन था सुकुमार,
पर न मुझे आकर्षित करता,
अब, न भावनाओं से भरता।
गिना दिनों से जाने हारा,
नहीं प्रेम अब रहा हमारा।
आदि, अनन्त प्रेम का कैसा !
मुझको तो अब लगता ऐसा—
तुझे सदा से मैं करता था इसी तरह से प्यार !

आत्म-सन्देह

आत्म-सन्देह

(१)

प्राण ! बहुत मैं तुझसे दूर !
कभी हृदय से बसने वाली
तुझे समझता मूर्ति निराली।
हाय ! सुदृढ विश्वास आज होता वह मुझसे दूर !

(२)

तुझ पर आते कष्ट-कलाप,
पर न उन्हें मैं बिल्कुल जानूँ।
हृदयासीन तुझे पर मानूँ !
हो सकता है इससे भी क्या बढ़कर व्यर्थ प्रलाप?

(३)

इच्छा तो थी मेरी, प्राण !
काँटे से भी कष्ट तुझे हो,
तत्क्षण अनुभव वही मुझे हो,
बड़े बड़े तेरे दुःखों का भी पर मुझे न ज्ञान ?

(४)

इच्छा थी तेरा दुख भार
मैं अपने ही ऊपर ले लूँ,
सुख अपने सब तुझको दे दूँ,
पर तेरा दुख अल्प हटाने में भी हूँ लाचार ।

(५)

कहता तुझसे प्रेम अमान !
किन्तु देख उसकी निर्बलता
हृदय हमारा भरे विकलता,
और कभी सन्देह हमारे मन में उठे महान ।

× × ×

(६)

सुने प्रेमियों के आख्यान—
घाव एक तन में लग जाता
रक्त-धार दूसरा बहाता—
सच थे वे, थे या कवियों के बस काल्पनिक उड़ान ?

(७)

मौत प्रेम से जाती हार ;
किसी एक को लेने आती,
उद्यत उसका प्रेमी पाती,
उसके बदले चलने को—चुप हो करती स्वीकार ।

(८)

सत्य कथाओं के आधार
यदि थे वे तो क्यों उनका सा
प्रेम नहीं मैं हूँ सकता पा ?
चला गया क्या साथ उन्हीं के जग से सच्चा प्यार ?

(९)

या मैं इतना मूर्ख गँवार,
नहीं समझ जो अब तक पाया
छली हृदय की छल-मय माया,
ढोंग प्यार का करता था, कहता था—करता प्यार।

× × ×

(१०)

मुझको है सन्देह अपार,
प्रेम नहीं क्या तुम थे करते ?
केवल उसका दम थे भरते ?
हृदय! सशंक नयन से मैं अब देखूँ तेरा प्यार।

(११)

अब तक थे क्या करते स्वाँग
हृदय ! प्रेम का ? क्यों न बताते ?
धोखे में क्यों उसको लाते ?
भीख प्रेम की तुमसे आकर कौन रही थी माँग।

(१२)

हृदय हमारी सुन फटकार
फूट फूट कर हो तुम रोते,
कहने को तो हो कुछ होते,
पर क्यों रुक जाते ? मैं सुनने को तो हूँ तैयार।

× × ×

(१३)

निर्बल प्रेम—करूँ स्वीकार,
पर मेरा अपराध बताते
जो, या मुझ पर दोष लगाते
जिसका, उसके कारण सारा अपराधी संसार।

(१४)

नवल-सृष्टि के प्रथम प्रभात
प्रकट हुआ शिशु मानव जब था,
गोद ख़ुशी की लेटा तब था,
पावन-प्रेम-दुग्ध-सिञ्चित था उसका कोमल गात।

(१५)

किन्तु अभागा मानव-बाल
मुख से हटा हटा कर अञ्चल,
फेर फेर अपने दृग चञ्चल,
लगा देखने रंग-बिरंगे जग का रूप विशाल।

(१६)

बालक-वञ्चक, निर्दय, नीच
जग ने उसका चित्त लुभाया,
मूक नयन से उसे बुलाया,
कौतुक ही वह उतर गोद से गया विश्व के बीच।

(१७)

विविध भावना के फल-फूल
खा कर उदर लगा निज भरने,
सकल दिशा में लगा विचरने;
गोद ख़ुशी की और प्रेम का दूध गया वह भूल।

(१८)

उस दिन से प्रति दिन अविराम
लगा प्रेम—बल उसका घटने,
प्रेम—तेज मुख पर से हटने,
किन्तु भयंकर इससे भी तो होना था परिणाम।

(१९)

हाय ! वासना-मद का पान।
करके मानव बन मतवाला,
विषय-कीच से कर मुख काला,
लगा उपेक्षित मातृ-दुग्ध का करने अब अपमान !!

(२०)

सदा—हर्षिता माँ को शोक
हो न सका, पर हुआ मलाल,
स-पय-प्रेम उड़ कर तत्काल
चली गई—बन गया हमारा शुष्क, शून्य यह लोक।

(२१)

गई जहाँ मानव व्यवहार
में बच्चों का भोलापन था,
निश्छल मन था निर्मल तन था,
सदा सरलता जिनके मुख का करती थी शृङ्गार।

(२२)

गर्व, स्वार्थ का जहाँ अभाव
स्वच्छ-हृदयता दिखा रही थी,
जिसे नम्रता सिखा रही थी,
मधुर-वचन-जल में नहला कर जल-सा नम्र स्वभाव।

(२३)

जहाँ मनुष्यों के आचार
को न प्रलोभन ललचाता था,
और जहाँ पर सुन्दरता का,
निर्मल नयनों ही से होता था स्वागत—सत्कार।

(२४)

सन्तति-हित विधि-विहित प्रपंच
भी न जहाँ मानव आचरता !
शिशु-इच्छा जब मन में करता
सुन्दर शिशु नट-सा आ करता शोभित शशि का मंच ।

(२५)

अभिनय करता मन भर मोद,
फिर क्रीड़ा करते अभिराम,
उतर चन्द्र-किरणों को थाम,
पल में लगता उछल-कूद करने दम्पति की गोद ।

(२६)

वहाँ विषय को सुख-आनन्द
नहीं स्वप्न में कोई भूल
कभी समझता; सब सुख-मूल
इस पृथ्वी पर समझा जाता, भाग्य हमारे मन्द !!

(२७)

योग्य प्रेम के वासस्थान
भला कहाँ मिलता इस भू पर ?
इसीलिए वह इसे छोड़ कर
चला गया निज मधुर-स्मृति का हमको छोड़ निशान ।

(२८)

मुझे प्रेम से अब भी प्यार ।
मधुर वस्तु होती प्यारी, पर
मधुर-स्मृति होती है प्रियतर;
विरले प्रेमी अब लेते हैं उसका ही आधार ।

(२९)

स्वप्न प्रेम के जो सुकुमार—
उन्हे देखना अब तुम छोड़ो,
पूर्व-भावना-निद्रा तोड़ो ।
कहाँ लौट सकता है जग में पहले का सा प्यार !

(३०)

अधःपतन मानव का देख
शंका ऐसा भय उपजाए—
कहीं न दिन ऐसा भी आए,
हृत्पट से जब मिट जाए स्नेह-स्मृति की भी रेख !!

जन्म-दिवस

जन्म दिवस

आ याद दिलाएँ 'जन्म-दिवस' की
हर्ष अनेक अपार तुम्हें।
हो, और, मुबारक जन्म-दिवस
प्यारी कविते, सौ बार तुम्हें।
हम दीन बड़े, हम दूर पड़े,
क्या भेंट करें उपहार तुम्हें?
सन्तोष इसी से कर लेना
सौ बार हमारा प्यार तुम्हें।

विदा

विदा

अच्छा कविते ! अब क्षमा-प्रार्थना—प्यार—
और विदा !......यात्री के आशीर्वाद
फूलो फलो, आबाद रहो,
राज़ी रहो, खुश रहो
फिर मिलेंगे
अच्छा !